५५३. अभिरभागे १।४।९१॥

भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसञ्ज्ञः स्यात्।
हरिमभि वर्तते। भक्तो हरिमभि। देवं देवमभि सिञ्चति।
अभागे किम्? यदत्र ममाभिष्यात् तद्दीयताम्।

अभिरभागे। अभिः प्रथमान्तम्, अभागे सप्तम्यन्तम्। **कर्मप्रवचनीयाः** का अधिकार है। **लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः** से **लक्षणेत्थम्भूताख्यान- वीप्सासु** की अनुवृत्ति आती है। प्रकृतसूत्र में **अभागे** शब्द के द्वारा प्रतिषेध किये जाने के कारण **भाग** शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती।

'लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा' इन अर्थों के विषयभूत होने पर अभि-शब्द की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है, परन्तु भागवर्जे=भाग अर्थ में उक्त संज्ञा नहीं होती है।

हरिमभि वर्तते। हरि की ओर है। यहाँ पर **अभि** शब्द को **लक्षण** अर्थ का विषय बना दिया गया है अर्थात् **हरि** की अनुकूलता ही **लक्ष्य** का ज्ञापक (लक्षक) है। अतः **अभि** शब्द की **अभिरभागे** सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में **हरि** शब्द में **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति होकर **हरिमभि वर्तते** वाक्य सिद्ध हो जाता है। यह लक्षण का उदाहरण है।

भक्तो हरिमभि। भक्त हरि की भक्ति से युक्त है। इस तरह भक्त का प्रकार बताया गया। फलतः यह **इत्थम्भूताख्यान** का विषय बना। अतः **अभि** शब्द की **अभिरभागे** सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में **हरि** शब्द में **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** सूत्र के द्वारा द्वितीयाविभक्ति होकर **भक्तो हरिमभि वर्तते** वाक्य सिद्ध हो जाता है। यह इत्थम्भूताख्यान का उदाहरण है।

देवं देवम् अभिसिञ्चति। प्रत्येक देव को स्नान कराता है (अभिषेक करता है)। यहाँ पर **अभि** शब्द को **वीप्सा** अर्थ का विषय बना दिया गया है। प्रत्येक के साथ सेचन सम्बन्ध की इच्छा के कारण **वीप्सा** है। अतः **अभि** शब्द की **अभिरभागे** सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता है। फलतः उपसर्गस्थ निमित्त से परे सकार को होने वाला षत्व बाधित हो जाता है। **देव** शब्द में द्वितीया विभक्ति तो **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा होकर **कर्मणि द्वितीया** से ही हो जाती है। इस तरह **देवं देवमभि सिञ्चति** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

अभागे किम्? यदत्र ममाभिष्यात् तद् दीयताम्। पदकृत्य बताने के लिये प्रश्न कर रहे हैं कि प्रकृतसूत्र में **अभागे** पद का प्रयोजन क्या है? पूर्वसूत्र में उक्त लक्षण आदि सभी अर्थों में **अभि** की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा हो किन्तु पूर्वसूत्र के ही **भाग** अर्थ में **अभि** की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न हो, इसके लिये प्रकृतसूत्र में भाग का निषेध करने के लिये **अभागे** की आवश्यकता है। जैसे कि **यदत्र मम अभिष्यात् तद् दीयताम्** इस वाक्य में जो **अभि** शब्द **स्यात्** क्रिया से युक्त है, वह भाग अर्थ का ही द्योतन कर रहा है। ऐसी स्थिति में कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाने से उपसर्गसंज्ञा का बाध हो जाता और **स्यात्** के सकार को षत्व न हो पाता। **अभागे** शब्द के ग्रहण से भागार्थ में विद्यमान **अभि** की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं हुयी अर्थात् उपसर्गसंज्ञा का बाध नहीं हुआ अपितु उपसर्गसंज्ञा होकर उससे परे सकार को **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** सूत्र से षत्व होकर **अभिष्यात्** बन जाता है। **यद् अत्र मम अभि ष्यात् तद् दीयताम्**=इसमें जो मेरा भाग=हिस्सा है, उसे मुझे दे दीजिये।

५५४. अधिपरी अनर्थकौ १।४।९३॥

उक्तसञ्ज्ञौ स्तः। कुतोऽध्यागच्छति? कुतः पर्यागच्छति?
गतिसञ्ज्ञाबाधाद् 'गतिर्गतौ' (सू.३९७७) इति निघातो न।

अधिपरी अनर्थकौ। अधिश्च परिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽधिपरी। न विद्यतेऽर्थो ययोस्तौ अनर्थकौ, बहुव्रीहिः। अधिपरी प्रथमाद्विवचनान्तम्, अनर्थकौ प्रथमाद्विवचनान्तम्।
कर्मप्रवचनीयाः का अधिकार है।

निरर्थक=किसी विशेष अर्थ के वाचक न होने पर अर्थात् धात्वर्थमात्र का बोधक होने पर अधि तथा परि ये अव्यय कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञक होते हैं।

अधि और **परि** ये जब किसी धातु के पहले लगें तो भी इनके लगने से धातु के अर्थ में कोई परिवर्तन न आये तो अनर्थक माने जाते हैं। वैसे **प्रादि** अनर्थक ही होते हैं अर्थात् किसी अर्थ के वाचक नहीं होते किन्तु अर्थ के द्योतक होते हैं तथापि अर्थद्योतकता भी न रहे तो यहाँ पर उन्हें अनर्थक कहा गया है।

कुतोऽध्यागच्छति। कहाँ से आता है। यहाँ आङ्पूर्वक **गम्** धातु का **आना** अर्थ है और **अधि** के लगने के बाद **अध्यागच्छति** का भी **आना** ही अर्थ है, अन्य किसी विशेष अर्थ का द्योतन नहीं हो रहा है। अतः यहाँ पर **अधि** अनर्थक है। उक्त वाक्य में **अधि** शब्द की **अधिपरी अनर्थकौ** सूत्र से **कर्मप्रवचनीयसंज्ञा** हो जाती है। यद्यपि **अधि** की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने से तत्प्रयुक्त कारक में कोई फल नहीं है तथापि कर्मप्रवचनीय संज्ञा से गति-संज्ञा का बाध होने के कारण **गतिर्गतौ** सूत्र से होने वाला निघातस्वर नहीं होता। यही यहाँ कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का फल है। **कुतः** भी अव्यय है, अतः उसमें किसी विभक्ति की आशंका नहीं है।

कुतः पर्यागच्छति? कहाँ से आता है। यहाँ आङ्पूर्वक **गम्** धातु का **आना** अर्थ है और **परि** के लगने के बाद **पर्यागच्छति** का भी **आना** ही अर्थ है, अन्य किसी विशेष अर्थ का द्योतन नहीं हो रहा है। अतः यहाँ पर **परि** अनर्थक है। उक्त वाक्य में **परि** शब्द की **अधिपरी अनर्थकौ** सूत्र से **कर्मप्रवचनीयसंज्ञा** हो जाती है। यद्यपि **परि** की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने से तत्प्रयुक्त कारक में तो कोई फल नहीं है, तथापि कर्मप्रवचनीय संज्ञा से गति-संज्ञा का बाध होने के कारण **गतिर्गतौ** सूत्र से होने वाला निघातस्वर नहीं हुआ।

५५५. सुः पूजायाम् १।४।९४॥

सुसिक्तम्, सुस्तुतम्। अनुपसर्गत्वान्न षः।

पूजायाम् किम्? सुषिक्तं किं तवात्र। क्षेपोऽयम्।

सुः पूजायाम्। सुः प्रथमान्तं, पूजायां सप्तम्यन्तम्। **कर्मप्रवचनीयाः** का अधिकार है।

पूजा अर्थ (प्रशंसनीय अर्थ) में वर्तमान 'सु' शब्द की कर्मप्रवचनीय-सञ्ज्ञा होती है।

सुसिक्तम्। अच्छी तरह सींचा, विधिपूर्वक अभिषेक किया। यहाँ **सु** प्रशंसा अर्थ का द्योतक है। अतः **सुः पूजायाम्** से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है। फलतः उपसर्गसंज्ञा का बाध होने के कारण उपसर्गत्वाभाव में उससे परे **षिच् (सिच्)** धातु के सकार को **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम्** सूत्र से विधीयमान मूर्धन्य षकार आदेश नहीं हुआ।

सुस्तुतम्। अच्छी तरह से स्तुति, पाठ किया। यहाँ पर भी **सु** प्रशंसा अर्थ का द्योतक है। अतः **सुः पूजायाम्** से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाती है। फलतः उपसर्गत्वाभाव में उससे परे **स्तु** धातु के सकार को **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्था- सेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम्** सूत्र से विधीयमान मूर्धन्य षकार आदेश नहीं हुआ। **ष्टुञ् स्तुतौ** धातु में **धात्वादेः षः सः** से षकार को सकारादेश और **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से टकार के तकार रूप में आ जाने से **स्तु** धातु बन जाती है और उससे **क्त** प्रत्यय होकर **स्तुतम्** बना है। प्रकृतसूत्र के अभाव में उपसर्गसंज्ञा होकर षत्व होने पर तकार को ष्टुत्व होकर **सुष्टुतम्** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता है।

पूजायाम् किम्? सुषिक्तं किं तवात्र। क्षेपोऽयम्। पदकृत्य बताने के लिये प्रश्न कर रहे हैं कि प्रकृतसूत्र में **पूजायाम्** पद का क्या प्रयोजन है? प्रयोजन यह है कि **प्रशंसा** अर्थ में वर्तमान **सु** अव्यय की ही कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा हो, अन्यथा न हो। अतः

सुषिक्तं किं तवात्र? (वाह, तुमने खूब सींचा (किन्तु तुम्हारा सींचना बेकार है) में निन्दा अर्थ होने के कारण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा नहीं होती। फलतः उपसर्गसंज्ञा हो जाने से **उपसर्गात्सुनोतिसुवति** से षत्व होकर **सुषिक्तम्** बन जाता है। इसी तरह **सुष्टुतं किं तवात्र** में समझना चाहिये। इन दोनों वाक्यों में अव्यय निन्दार्थ का द्योतक है। **क्षेपः**=निन्दा अर्थ ही विद्यमान है।

५५६. अतिरतिक्रमणे च १।४।९५॥

अतिक्रमणे पूजायां च अतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात्।

अति देवान् कृष्णः।

अतिरतिक्रमणे च। अतिः प्रथमान्तं, अतिक्रमणे सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **कर्मप्रवचनीयाः** का अधिकार है और **च** शब्द से पूर्वसूत्र **सुः पूजायाम्** के **पूजायाम्** पद का समुच्चय है, अतः उसकी अनुवृत्ति आती है।

अतिक्रमण तथा प्रशंसा अर्थों में वर्तमान 'अति' अव्यय की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

अति देवान् कृष्णः। कृष्ण देवों से बढ़कर हैं। यहाँ **अति** शब्द का अतिक्रमण तथा पूजा ये दोनों अर्थ विवक्षित हैं। अतः **अति** की **अतिरतिक्रमणे च** से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने पर उसके योग में **देव** शब्द में **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति होकर **अति देवान् कृष्णः** वाक्य सिद्ध हो जाता है।

५५७. अपिः पदार्थसंभावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु १।४।९६॥

एषु द्योत्येष्वपिरुक्तसञ्ज्ञः स्यात्। सर्पिषोऽपि स्यात्।

अनुपसर्गत्वान्न षः। संभावनायां लिङ्। तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते। 'सर्पिषः' इति षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसंबन्धे। इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम। द्वितीया तु नेह प्रवर्तते, सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात्। अपि स्तुयाद्विष्णुम्, संभावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुम् अत्युक्तिः। अपि स्तुहि, अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा। धिग् देवदत्तम् अपि स्तुयाद् वृषलम्, गर्हा। अपि सिञ्च, अपि स्तुहि, समुच्चये।

अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु। पदार्थश्च सम्भावनं च अन्ववसर्गश्च गर्हा च समुच्चयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयाः, तेषु पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु। अपिः प्रथमान्तं, पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हा- समुच्चयेषु सप्तम्यन्तम्। **कर्मप्रवचनीयाः** का अधिकार है।

पदार्थ, सम्भावन, अन्ववसर्ग, गर्हा तथा समुच्चय अर्थों के द्योतन में 'अपि' इस अव्यय की कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञा होती है।

कुछ विशेष अर्थों को अभिलक्षित करके **अपि** शब्द की कर्मप्रवचनीसंज्ञा होने के सम्बन्ध में निर्देश दिये जा रहे हैं। **पदस्यार्थः=पदार्थः** यह अर्थ न होकर यहाँ पर वाक्य में अप्रयुक्त किसी भिन्न पद के अर्थ को भी 'पदार्थ' कहते हैं। वाक्यार्थ को स्पष्ट करने के लिए यदा-कदा ऐसे पद के अर्थ का अध्याहार किया जाता है, जो वाक्य में साक्षात् व्यक्त नहीं होता है। इस अध्याहृत पद के अर्थ को **पदार्थ** कहा जाता है। प्रकृतसूत्र में उसी तरह के पदार्थ का ग्रहण है।

सम्भावन- शक्ति के उत्कर्ष को प्रकट करने के लिये बढ़ा-चढ़ाकर कहना **सम्भावन** कहलाता है।

अन्ववसर्ग- का अर्थ है- कामचार। अर्थात् इच्छापूर्वक काम करने की अनुमति देना। इच्छा हो तो करो और न हो तो न करो।

गर्हा का अर्थ **निन्दा** के रूप में प्रसिद्धि है ही।

समुच्चय का अर्थ है- समूह अर्थात् अनेक पदार्थों को एकत्र करना। अब आगे क्रमशः उन अर्थों के साथ **अपि** शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

सर्पिषोऽपि स्यात्। थोड़ा सा घी हो सकता है अथवा घी तो नहीं किन्तु घी की बूंद हो सकती है। भोजनकर्ता को थोड़ा घी दिया गया और उसके उपहासस्वरूप यह कथन है। **पदार्थ** में विद्यमान **अपि** शब्द की **अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु** सूत्र से कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञा हुयी। फलतः उपसर्गसञ्ज्ञा का बाध होने से **स्यात्** के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

अनुपसर्गत्वान्न षः। अर्थात् **सर्पिषः अपि स्यात्** इस वाक्य में अपि-शब्द में कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसंज्ञा का बाध होने कारण उपसर्गत्वाभाव हो जाता है, फलतः **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** सूत्र से षत्व नहीं होता।

सम्भावनायां लिङ्। अर्थात् **सर्पिषोऽपि स्यात्** इस वाक्य में **स्यात्** यह तो तिङन्त पद है, उसमें **अस भुवि** धातु से **सम्भावनायां लिङ्** सूत्र के द्वारा सम्भावनार्थ में लिङ् लकार हुआ है। यह लिङ्, प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।

तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपि शब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते। तस्याः एव=सम्भावना अर्थ के ही, **विषयभूते भवने**=सत्ता, भवन, होना, रहना आदि के विषयभूत होने पर, **कर्तृदौर्लभ्यप्रयुक्तम्**=कर्ता (घी आदि) की दुर्लभता को प्रकट करने वाले, **दौर्लभ्यम्**=दुर्लभता को, **द्योतयन्**=द्योतन करता हुआ, **अपि शब्दः**=**अपि** ऐसा शब्द (**सर्पिषोऽपि स्यात्** का **अपि**-शब्द) यह **स्यात् इत्यनेन सम्बध्यते**=उक्त वाक्य में विद्यमान **स्यात्** क्रियापद के साथ सम्बद्ध रखता है। वाक्य में कर्ता और क्रिया का होना अनिवार्य है। **सर्पिषोऽपि स्यात्** इस वाक्य में क्रिया तो **स्यात्** है किन्तु **कर्ता** कौन सा पद है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा गया कि क्रिया के साथ **अपि** का सम्बन्ध होने से **अपि** शब्द ही कर्ता है। अब प्रश्न आता है कि अव्यय **अपि** शब्द असत्त्ववाची है और वह **कर्ता** कैसे बन सकता है? इस पर कहा गया कि यहाँ **अपि** शब्द के द्वारा अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन किया गया है। क्या है वह अप्रयुक्त शब्द का अर्थ? घी का अभाव। दुर्लभताप्रयुक्त दौर्लभ्य का द्योतन करने वाला अपि-शब्द ही कर्ता है और उससे अतिशय दुर्लभता का ज्ञान हो रहा है। अतः वही (घी की) दुर्लभता ही सम्भावनात्मक सत्ता में कर्ता है। इस तरह **अपि** शब्द से जिस अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन हो रहा है, वही उक्त वाक्य का कर्ता है। **अपि** शब्द के द्वारा किस अप्रयुक्त शब्द के अर्थ का द्योतन हो रहा है? घी की बूंद (बिन्दु) अर्थ का द्योतन हो रहा है। इस तरह अप्रयुक्त **बिन्दु** शब्द के अर्थ की द्योतकता **अपि** शब्द में होने के कारण इसे पदार्थद्योतकता कहते हैं।

अब प्रश्न आता है कि यदि **अपि** शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होने के बाद उसके योग में **सर्पिष्** शब्द से द्वितीया होनी चाहिये, षष्ठी कैसे हुयी और **सर्पिषः** कैसे बना। इसका उत्तर मूलकार दे रहे हैं-

'सर्पिषः' इति षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयवि- भावसंबन्धे। अर्थात् **सर्पिषः** पद में तों **अपि** शब्द के द्वारा गम्यमान **बिन्दु** के साथ **सर्पिष्** शब्द का अन्वय करके **सर्पिषः बिन्दुः** इस तरह अवयव **बिन्दु** और अवयवी **सर्पिस्** मानकर **अवयवावयविभाव**-सम्बन्ध में **शेषे** सूत्र के द्वारा षष्ठी विभक्ति हुयी है। अतः **सर्पिषः** यह षष्ठ्यन्त प्रयोग हो जाता है। तात्पर्य यह है कि **सर्पिषः अपि स्यात्** इस वाक्य में **सर्पिषः** पद का अर्थ सापेक्ष है। वह **बिन्दु (बूंद)** अर्थ की अपेक्षा रखता है। **घी की बूंद (सर्पिषो बिन्दुः)** कहने से उत्कण्ठा शान्त हो जाती है अर्थात् वाक्यार्थ पूरा हो जाता है। वक्ता का तात्पर्य श्रोता यह समझ लेता है कि घी का नितान्त अभाव है। वाक्य में **बिन्दु** शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। वह **अपि** शब्द से द्योतित होता है। इसी लिये मूलकार ने लिखा है कि प्रकृत वाक्य में **स्यात्** पद में **अस्** धातु से सम्भावनार्थक लिङ् लकार है। **सम्भावना**=**उत्प्रेक्षा** में उत्कटकोटिक=अत्यधिक शंका विद्यमान रहती है। अतः सम्भावना=अत्यधिक शंका से सम्बन्ध रखने वाली घृत की सत्ता में **बिन्दु** कर्ता की दुर्लभता के कारण उसके अस्तित्व की दुर्लभता को घोषित करता हुआ **अपि** शब्द **स्यात्** क्रिया के साथ अन्वित होता है। वाक्य में **सर्पिषः** शब्द षष्ठ्यन्त है और यह षष्ठी अवयव-अवयवी-भाव सम्बन्ध सूचित करती है। तदनुसार **घी** अवयवी और **बिन्दु** उसका अवयव है। **अपि** शब्द के सामर्थ्य से अवयवी **सर्पिष्** के साथ अवयव **बिन्दु** का स्वाभाविक सम्बन्ध ज्ञात होता है। इस तरह **सर्पिषोऽपि स्यात्** इस वाक्य का अर्थ है- **सर्पिषो बिन्दुरपि स्यात्**।

इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम। भोजन में अन्नशुद्धि के लिये घी परोसने की परम्परा है किन्तु घी की दुर्लभता के कारण घी की बूंद मात्र से कार्य चलाया जा रहा है और घी की बूंद का ज्ञान **अपि** शब्द के द्वारा होने के कारण **इयम् एव अपि-शब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम**=**बिन्दु** शब्द के बिना ही बिन्दु अर्थ का ज्ञात कराना ही यहाँ पर **अपि** शब्द की पदार्थद्योतकता है। यही **अपि** शब्द की अप्रयुक्त-पदार्थ को द्योतित करने की शक्ति है।

अब प्रश्न आता है कि जब **अपि** शब्द की प्रकृतसूत्र से कर्मप्रचनीयसंज्ञा हो ही जाती है तो उसके योग में **सर्पिस्** शब्द में **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति क्यों नहीं होती? इसका उत्तर मूलकार ने निम्नप्रकार से दिया है-

द्वितीया तु नेह प्रवर्तते, सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात्। अर्थात् जिसका सम्बन्ध **अपि** के साथ हो, उसी में उपर्युक्त सूत्र से द्वितीया हो सकती है। यहाँ **सर्पिषोऽपि स्यात्** में **सर्पिः** का योग **अपि** शब्द से गम्यमान **बिन्दु** शब्द के साथ है, न कि **अपि** शब्द के साथ। अतः **सर्पिस्** का कर्मप्रवचनीय **अपि** के साथ योग न होने के कारण उक्त सूत्र से द्वितीया नहीं होती। इस तरह यहाँ **अपि** शब्द की कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का फल द्वितीया विभक्ति न होकर षत्व का अभाव ही है।

पदार्थद्योतन का उदाहरण विशेष विवेचन पूर्वक बता कर अब सम्भावन आदि अर्थों में **अपि** की कर्मप्रवचनीसंज्ञा का फल बता रहे हैं-

अपि स्तुयाद् विष्णुम्। वह विष्णु की स्तुति कर सकेगा? यहाँ अत्युक्ति है। इसका भाव यह है कि विष्णु की स्तुति करना सम्भव नहीं है, श्री विष्णु भगवान् वाक् और मन से अगोचर हैं तो वाक् के द्वारा उनकी स्तुति कैसे सम्भव है? सम्भावन अर्थ का

द्योतन करने के कारण **अपि** शब्द की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा हुई। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसञ्ज्ञा का बाध हो जाता है, फलतः **अपि+स्तुयात्** में **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यति-**
स्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम् सूत्र से उपसर्ग से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः **अपि स्तुयात्** ही बनता है।

सम्भावनं शक्त्युकर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः। अर्थात् शक्ति से उत्कर्ष को प्रकट करने के लिये बढ़ा-चढ़ाकर कहने को **सम्भावन** कहा जाता है, जिसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। अब आगे अन्ववसर्ग का उदाहरण दे रहे हैं।

अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा। इच्छानुसार काम करने की अनुमति देना अर्थात् चाहे करो और चाहे न करो, इस तरह की अनुमति ही **अन्ववसर्ग** है और इसी को **कामचारानुज्ञा** कहते हैं।

अपि स्तुहि। चाहो तो स्तुति करो अथवा न करो, तुम्हारी इच्छा। यहाँ कामचार अर्थ का प्रकाशन **अपि** शब्द के द्वारा हो रहा है। **इच्छानुसार** अर्थ को प्रकाशित करने के कारण **अन्ववसर्ग** अर्थ के द्योत्य होने से **अपि** शब्द की **अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्ग- गर्हासमुच्चयेषु** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसञ्ज्ञा का बाध हो जाता है, फलतः **अपि+स्तुहि** में **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभति- स्थासेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम्** सूत्र से उपसर्गस्थ निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः **अपि स्तुहि** ही बनता है।

धिग् देवदत्तम्, अपि स्तुयाद् वृषलम्। देवदत्त को धिक्कार है जो वृषल की स्तुति करता है। यहाँ आचरण के कारण **वृषल** के निन्द्य होने से उसकी स्तुति (चापलूसी) करने में निन्दा अर्थ का बोध होता है। यहाँ **गर्हा** अर्थ को प्रकाशित करते हुये **अपि** शब्द की **अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसञ्ज्ञा का बाध हो जाता है, फलतः **अपि+स्तुयात्** में **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषञ्जष्वञ्जाम्** सूत्र से उपसर्गस्थ निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः **अपि स्तुयात्** ही बनता है। यहाँ पर **स्तुयात्** में **स्तु** धातु से **गर्हायां लडपिजात्वोः** सूत्र से प्राप्त लट् लकार को परत्व और अन्तरंगत्व निमित्त से बाधकर **सम्भावनायां लिङ्** से लिङ् लकार हुआ है। यह **गर्हा** का उदाहरण है।

अपि सिञ्च, अपि स्तुहि। सींचो (अभिषेक करो) भी और स्तुति (पाठ) भी करो। यहाँ **अपि** शब्द के द्वारा दोनों कार्यों को करना रूप **समुच्चय** अर्थ का प्रकाशन हो रहा है। अतः **अपि** शब्द की **अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु** सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुयी। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा से उपसर्गसञ्ज्ञा का बाध हो जाता है, फलतः **अपि+सिञ्च** में **उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचषञ्ज- ष्वञ्जाम्** सूत्र से उपसर्गस्थ निमित्त से परे सकार को होने वाला षकारादेश नहीं होता। अतः **अपि सिञ्च** और **अपि स्तुहि** इन दोनों वाक्यों में षत्वरहित रूप होते हैं। यह समुच्चयार्थ का उदाहरण है।

५५८. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २।३।५॥

इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी। मासमधीते। मासं गुडधानाः।
क्रोशं कुटिला नदी। क्रोशमधीते। क्रोशं गिरिः।
अत्यन्तसंयोगे किम्? मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः।

॥ इति द्वितीया॥